

## पतंजलि योग सूत्र में वर्णित सिद्धान्त एवं साधनाओं का विवेचनात्मक अध्ययन

सचिन कुमार <sup>1</sup> डा. सुरेन्द्र कुमार <sup>2</sup>

### शोध—सार

पतंजलि योग सूत्र में योग के स्वरूप, उद्देश्य और साधना पद्धति का विस्तृत वर्णन किया गया है। समस्त सांसारिक बन्धनों का कारण अविवेक है, पुरुष और प्रकृति की भिन्नता के ज्ञान का अभाव ही बन्धन है और इस बन्धन से मुक्ति विवेक ज्ञान से संभव है। जब आत्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, तब समस्त प्रकार के बन्धनों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्रों में आत्म ज्ञान को प्राप्त करने एवं योग की उच्चतम अवस्था समाधि प्राप्त करने के लिये विस्तृत रूप से विभिन्न सिद्धान्त एवं साधनाओं का वर्णन किया है। योग सूत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि योग सूत्र आध्यात्मिक लक्ष्य या जीवन के आत्यन्तिक लक्ष्य की प्राप्ति का अचूक साधन है। साथ ही योग, मानव जीवन को सार्थक और सफल बनाने का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है। यह तथ्य सर्वमान्य है कि इच्छा और धारणा शक्ति जगत् की सबसे महत्वपूर्ण शक्तियाँ हैं, इन्हीं के सहारे आज तक सभी महापुरुषों, सिद्धों, तपस्वियों ने बड़े-बड़े कार्य किये हैं। महर्षि पतंजलि अपने निष्कर्षों को रहस्यमय संकेतों के रूप में नहीं बल्कि वैज्ञानिक सूत्रों के रूप में प्रकट करते हैं। उन्होंने मनुष्य के अंतर्जगत के निरपेक्ष नियमों का नियमन करके सत्य और मानवीय मन की चरम कार्य प्रणाली के विस्तार का अन्वेषण और प्रतिपादन किया है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य पतंजलि योग सूत्र में वर्णित सिद्धान्त एवं साधनाओं का अध्ययन कर इन सूत्रों की व्यवहारिकता एवं उपयोगिता को स्पष्ट करना है।

कूट शब्द — बन्धन, समाधि, अंतर्जगत, सिद्धान्त, साधना।

---

<sup>1</sup> शोध विद्यार्थी, योग विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

<sup>2</sup> विभागाध्यक्ष, योग विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्रों में साधना एवं सिद्धान्तों विषयक अनुशासन को समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य नामक कुल चार पादों में विभक्त किया है जिनमें क्रमशः 55, 51, 55 एवं 34 अर्थात् कुल 195 सूत्र हैं। महर्षि पतंजलि के अनुसार चित्त वृत्तियों का निरोध अर्थात् उन्हें रोकना योग है, <sup>1</sup> इस सूत्र से यह सिद्ध होता है कि पतंजलि को योग से आत्मा परमात्मा या आत्मा को परमात्मा से जोड़ना अर्थ अभिष्ट नहीं है बल्कि युज समाधो अर्थात् समाधि (चित्तवृत्ति निराध) अर्थ वाली युज धातु से व्युत्पन्न योग ही अभिष्ट है। सूत्र में वर्णित चित्त गुणों का सर्वप्रथम सत्त्वप्रधान परिणाम है। बाहरी अथवा भीतरी संसर्ग विषयक चित्त (सत्) में क्षण प्रतिक्षण गुणों को जो परिणाम हो रहा है उसको चित्तवृत्ति कहते हैं इस प्रकार इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों से आकर्षित होकर चित्त का तद् तद् आकारों से परिमित होना चित्त की वृत्तियाँ हैं जब चित्त बाह्य तथा आभ्यान्तर विषयाकार परिणामों को त्यागकर अपने रूप में अव्यवस्थित हो जाता है, तब उसको चित्तवृत्ति निरोध कहते हैं।

महर्षि पतंजलि ने साधना के सिद्धान्त के रूप में चित्तवृत्ति निरोध को मुख्य रूप से मान्यता प्रदान की है, समस्त योग सूत्रों की धुरी चित्तवृत्ति निरोध के मार्ग एवं इस मार्ग में आने वाली समस्याओं के समाधान तथा साधना मार्ग के फलश्रुतियों को स्पष्ट करने से सम्बन्धित प्रकट होती है। चित्तवृत्ति निरोध से सब प्रकार की चित्तवृत्तियों का निरोध नहीं समझना चाहिये क्योंकि समाधि के असम्प्रज्ञात और सम्प्रज्ञात दो रूपों में प्रथम अवस्था में चित्तवृत्ति का निरोध तो योग है ही किन्तु समाधि का दूसरी अवस्था सम्प्रज्ञात में जिसमें सात्त्विक एकाग्रवृत्ति बनी रहती है कि पाँच अवस्थाएँ बताई हैं।<sup>2</sup> जिनके नाम क्रमशः 1—मूढ, 2—क्षिप्त 3—विक्षिप्त 4—एकाग्र और 5—निरुद्ध हैं। चित्त की मूढावस्था तमप्रधान है। जिसमें सत्त्व एवं रज गुण अप्रधान होते हैं। चित्त की क्षिप्तावस्था रज प्रधान होती है इसमें तम एवं सत्त्व गुण अप्रधान होते हैं। चित्त की विक्षिप्तावस्था सत्त्व प्रधान अवस्था है जिसमें रजस एवं तमस गुण अप्रधान होते हैं चित्त की चौथी एकाग्रवस्था भी सत्त्व प्रधान है जिसमें रजस एवं तमस गुणों की वृत्ति मात्र उपस्थिति होती है। चित्त की पाँचवी और अन्तिम निरुद्धावस्था में गुणों का बाहर से परिणाम बन्द हो जाता है। प्रथम व द्वितीय अवस्थाएँ व्युत्थान की अवस्थाएँ हैं तृतीय अवस्था व्युत्थान और समाधि के आरम्भ की अवस्था है। चौथी सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था है और पाँचवी अवस्था असम्प्रज्ञात समाधि है, जिसमें पुरुष अपने समरूप में स्थित हो जाता है। सम्पूर्ण पतंजलि योग साधना चित्त की वृत्तियों के निरोध के लिये आयोजित है। जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है, तब दृष्टा की सस्वरूप में अवस्थिति होती है।<sup>3</sup> समाधि पाद में जिन वृत्तियों का उल्लेख है उन्हें पाँच प्रकार का बताया गया है प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, और स्मृति।<sup>4</sup> पाँच प्रकार की वृत्तियाँ हैं इनमें से कुछ क्लिष्ट हैं और अक्लिष्ट हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम नामक तीन प्रमाणों का उल्लेख किया है जिनसे प्रमा अर्थात् यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। क्रमशः विपर्यय (मिथ्याज्ञान), विकल्प, निद्रा और स्मृति को परिभाषित और निरूपित किया गया है।<sup>5</sup> अभ्यास और वैराग्य नामक दो

उपायों से चित्त वृत्तियों का निरोध होता है।<sup>6</sup> चित्त की स्थिति के विषय में यत्न को अभ्यास बताया गया है। तदन्तर वैराग्य का वर्णन है, जिसके दो प्रकार बताये गये हैं। एक प्रकार का वैराग्य है वह है जिसमें दृष्ट और अनुश्रविक विषयों में तृष्णा नहीं रह जाती है इस वैराग्य की वशीकार संज्ञा है।<sup>7</sup> इसी पाद में विवेकज्ञाति द्वारा गुणों से तृष्णारहित हो जाने को पर वैराग्य बताया गया है।<sup>8</sup> पर-अपरवैराग्य की व्याख्या में यह बताया गया है कि दृष्ट और आनुश्रविक विषयों में दोष देखकर के जब चित्त विरक्त हो जाता है तब उसमें एकाग्रता उत्पन्न होती है यह एकाग्र सम्प्रज्ञात समाधि अवस्था है।<sup>9</sup> यही चित्त (प्रकृति) और पुरुष का भेद का साक्षात्कार होता है। इसके पुरुष ख्याति, सत्त्वपुरुषान्यता ख्याति तथा विवेकज्ञाति आदि कई नाम हैं, इस विवेकज्ञाति की दशा में निरन्तर अभ्यास से यह ज्ञान भी होता है पुरुष ख्याति भी चित्त की एक सात्विक वृत्ति और गुणों का परिणाम है। जिसके कारण तब इससे भी वैराग्य उत्पन्न हो जाता है यह पर-वैराग्य की स्थिति है। इस पर-वैराग्य के उदय की स्थिति में योगसूत्र के विद्वान भाष्यकार के अनुसार योगी धर्म-मेंघ समाधिनिष्ठ व यह अनुभव करता है जो प्राप्त करने योग्य था वह प्राप्त हो गया है जो नाश करने योग्य क्लेश थे वे नष्ट हो गये और अब उस संसार का संक्रम टूट गया है। यहाँ पर वैराग्य का उदय ही ज्ञान की पराकाष्ठा है जिसके निरन्तर अभ्यास से कैवल्य उत्पन्न होता है।<sup>10</sup> असम्प्रज्ञात समाधि की दशा का वर्णन करते हुये सूत्रकार ने बताया है कि इस स्थिति में कोई वृत्ति नहीं रहती है। केवल विराम प्रत्ययरूप पर वैराग्य के निरोध के संस्कार शेष रहते हैं। योग सूत्र ग्रन्थ के प्रथम समाधि पाद में पूर्व वर्णित अभ्यास और वैराग्य से समाधि लाभ का वर्णन करने के बाद सूत्रकार ने एक और उपाय ईश्वरप्राणिधान बताया है।<sup>11</sup> ईश्वरप्राणिधान से सूत्रकार का आशय उसका (ईश्वर का) जप करना और उसी का पुन पुन चिन्तन करना है।<sup>12</sup> यही परसंगत पुरुष विशेष के रूप में ईश्वर का निरूपण किया गया है जिसके प्राणिधान से जीव को स्वरूप का साक्षात्कार होता है। क्लेश, कर्म, विपाक और आशय (अविद्या कर्मों के फल और वासनाओं) से असम्बद्ध अन्य पुरुषों से विशेष चेतन ईश्वर है।<sup>13</sup> निराकार, निर्विकार पुरुष विशेष ईश्वर का वाचक प्रणव है।<sup>14</sup> प्रणव अर्थात् ओंकार है। भाष्यकारों ने ईश्वर और प्रणव के वाच्य-वाचक सम्बन्ध को नित्य और अनादि माना है। सूत्रकार ने ईश्वर प्राणिधान के दो फल बताये हैं। एक यह कि इसमें प्रत्यक्-चेतना अथवा जीवात्मा का साक्षात्कार (अधिगम) होता है और इस अधिगम में आने वाले अन्तरायों (विघ्नों) का अभाव भी होता है।<sup>15</sup> यहीं प्रसंगतः व्याधि, स्त्यान और संशय आदि चित्त विक्षेपों की चर्चा भी आयी है, जिन्हें अन्तराय अर्थात् विघ्न कहा गया है। विघ्नों के निराकरण के लिये यत्न करने का निर्देश दिया गया है। चित्त में क्लेश हों तब भी स्थिति लाभ नहीं होता है। इन मलिनताओं को दूर करने के लिये मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा नामक चार उपाय बताये गये हैं।<sup>16</sup> चित्त वृत्तियों के निरोध के क्रम में ही प्रच्छेदन और विधारण विधि द्वारा प्राणायाम की चर्चा भी आयी है।<sup>17</sup> इस प्रकार विभिन्न उपायों से जब चित्त की राजस् और तामस् वृत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं तब उसमें सत्त्व के बढ़ने से निर्मल मन, स्वरूप-साक्षात्कार

के लिये योग्य बना जाता है। यह स्थिति सम्प्रज्ञात-समाधि की है। कमशः वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात-समाधि सबीज-समाधि कहलाती है।<sup>18</sup> इनमें निर्विकार समाधि की परिपक्वता होने पर अध्यात्म की निर्मलता प्राप्त होती है।<sup>19</sup> अध्यात्म प्रसाद से ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है।<sup>20</sup> इस ऋतम्भराप्रज्ञा से उत्पन्न होने वाला संस्कार व्युत्थान दशा के सब संस्कारों का बाधक होता है और जब उस ऋतम्भरा प्रज्ञा जन्य संस्कार का भी निरोध हो जाता है, तब निर्बीज समाधि की सिद्धि होती है।<sup>21</sup> यह निर्बीज समाधि असम्प्रज्ञात समाधि भी कहलाती है और योग साधना का यही चरम परम प्राप्तव्य है।

महर्षि पतंजलि ने पहले पाद में उत्तम योग साधकों के लिये गये योग का परिभाषित करते हुये उसकी साधना के फल समाधि का निरूपण किया गया है वही साधनपद में मध्यम कोटि के साधकों के लिये चित्त को एकाग्र कर समाधि तक पहुँचाने के लिये क्रिया-योग एवं, अष्टांग योग का उल्लेख हुआ है। इस पाद में तप स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान का क्रिया-योग बताया गया है।<sup>22</sup> तप से अभिप्राय अनादि कर्म क्लेश वासना से युक्त राजस् तामस् वृत्तियों के प्रसार को रोकने के लिये किये जाने वाले अनुष्ठान से है। जो तप चित्त की प्रसन्नता का हेतु हो तथा शरीर और इन्द्रिय आदि के लिये पीड़ाकारक न हो वही तप सेवनीय है। स्वाध्याय, योग और सम्बन्धित आध्यात्मिक शास्त्रों के अध्ययन से और श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन द्वारा ईश्वर के प्रति स्वयं को समर्पित करना ही क्रिया योग का प्रयोजन है।<sup>23</sup> समाधि की भावना के लिये तथा क्लेशों को कमजोर करने के लिये, यहाँ प्रसंगतः अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष और अभिनिवेश नामक पाँच क्लेशों की चर्चा हुयी है।<sup>24</sup> दृष्टा और दृश्य के संयोग को हेय हेतु अर्थात् त्याज्य दुख का कारण बताया गया है।<sup>25</sup> दृश्य को परिभाषित करते हुये महर्षि पतंजलि ने प्रकाश, क्रिया और स्थिति जिसका भाव है तथा भूतेन्द्रियदयात्मकभोगापवर्ग जिसका प्रयोजन है उसे दृश्य बतलाया गया है।<sup>26</sup> जो सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीनों से बना है। सत्त्व प्रकाशशील है और रज क्रियाशील तथा तमः स्थितिशील है। ये परस्पर संयोग विभाग-धर्म वाले हैं। दृश्य का स्वभाव स्वरूप व प्रयोजन बताने के पश्चात् महर्षि पतंजलि ने गुणों की अवस्थाएं भी बतायी गयी हैं।<sup>27</sup> विशेष अविशेष, लिंगमात्र और अलिंग ये गुणों की चार अवस्थाएं हैं।<sup>28</sup> पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिया, पाँच कर्मेन्द्रियां और एक मन ये सोलह तीनों गुणों के विशेष परिणाम बताये गये हैं। वे सब शान्त घोर और मूढ रूप से इनमें रहते हैं। पाँच तन्मात्राएँ और एक अहंकार इन छः को अविशेष गुण-पर्व कहते हैं।<sup>29</sup>

दृश्य का वर्णन करने के पश्चात् दृष्टा को स्पष्ट करते हुये सूत्रकार ने बताया है कि दृष्टा जो देखने की शक्ति मात्र से निर्विकार होता हुआ भी चित्त की वृत्तियों के अनुसार देखने वाला है। यहाँ यह बताया गया है कि यद्यपि पुरुष ज्ञान स्वरूप ही है तथा बुद्धिरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित होने से उस बुद्धि के

धर्म भूत ज्ञान का आधार प्रतीत होता है। दृश्य-दृष्टा के लिये है यह बताया गया है कि प्रकृति (अर्थात् दृश्य) अपने किसी भी प्रयोजन की इच्छा न करके केवल पुरुष के भोग और अपवर्ग के लिये प्रवृत्त होती है।<sup>30</sup> स्वशक्ति और स्वामीशक्ति की उपलब्धि के कारण के रूप में संयोग का वर्णन किया गया है। अर्थात् संयोग हटाने के लिए स्वशक्ति और स्वामी शक्ति के स्वरूप की उपलब्धि की जाती है। स्वशक्ति अर्थात् दृश्य के स्वरूप की उपलब्धि जो भोग है सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा और स्वामीशक्ति अर्थात् पुरुष के स्वरूप की उपलब्धि जो अपवर्ग रूप है। असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा की जाती है। संयोग को हेय बताया गया है। यह संयोग ही वास्तव में पुरुष के मिथ्याज्ञान का कारण है जिसके चलते चित्तरूप स्व और पुरुष रूप स्वामी को जड-चेतन के संमिश्रण से एक नये जीव-भाव की उत्पत्ति हुयी है। इस संयोग को हटाने के लिये स्व और स्वामी की उपलब्धि की जाती है। सूत्रकार ने संयोग को परिभाषित करने के पश्चात अविद्या को इसका कारण बताया है। अविद्या के अभाव से संयोग के अभाव को हान बताया है जो चितशक्ति अर्थात् द्रष्टा का कैवल्य है।<sup>31</sup> अभिप्राय यह कि जो संयोग दुःख का कारण बताया गया है उसका अविद्या के नाश से नाश हो जाता है। जब योगी को विवेकख्याति प्राप्त हो जाती है तब उसे सात प्रकारों में— 1. हेय शून्यावस्था, 2. हेय हेतुक्षीण अवस्था, 3. प्राप्य-प्राप्त-अवस्था, 4. चिकीर्षाशून्यावस्था, 5. चित्तसतव कृतार्थतावस्था, 6. गुण लीनतावस्था तथा 7. आत्मस्थिति का वर्णन व्याख्याकारों ने किया है।<sup>32</sup> साधनपाद के अन्तिम भाग में योग के आठ अंगों का वर्णन और निरूपण किया गया है। बताया गया है कि योग के अंगों के अनुष्ठान से क्लेशरूपी अशुद्धि के दूर होने पर ज्ञान का प्रकाश विवेकख्याति पर्यन्त हो जाता है।<sup>33</sup> महर्षि पतंजलि ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि नामक योग के आठ अंगों का इस पाद में उल्लेख किया है।<sup>34</sup> अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को यम कहा गया है।<sup>35</sup> इन्हें जाति, देश, काल और समय की सीमा से रहित सार्वभौममहाव्रत बताते हुये इनका महत्त्व भी स्पष्ट किया है।<sup>36</sup> शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पाँच नियम हैं।<sup>37</sup> शरीर की स्थिर और सुखदायी स्थिति ही आसन है।<sup>38</sup> आसनों की सिद्धि के विषय में बताया गया है कि प्रयत्न की शिथिलता और समापत्ति द्वारा आसन सिद्ध होता है। शरीर की स्वाभाविक चेष्टा का नाम प्रयत्न है। इसे रोकने से उपरत होना प्रयत्न की शिथिलता कहलाती है। समापत्ति अर्थात् तद्रूपता-प्राप्ति भी आसन-सिद्धि का कारण कहा गया है।<sup>39</sup> सूत्रकार ने श्वास और प्रश्वास की गति को अभीष्ट-विधि से रोकना प्राणायाम बतलाया है।<sup>40</sup> बाह्य-अभ्यान्तर और स्तम्भ-वृत्ति से यह तीन प्रकार का होता है, देशकाल और संख्या से यह लम्बा और हल्का होता है।<sup>41</sup> बाह्य, आभ्यन्तर और स्तम्भ-वृत्ति का प्रचलित रूप कमशः रेचक, पूरक और कुम्भक रूप में जाना जाता है। यहाँ बाह्य और आभ्यन्तर विषयों को रोकने वाले चतुर्थ प्राणायाम की भी चर्चा हुयी है।<sup>42</sup> यह प्राणायाम बाह्य तथा आभ्यन्तर कुम्भक के बिना केवल रेचक, पूरक द्वारा बाह्य तथा आभ्यन्तर विषय के केवल आलोचनपूर्वक स्वयं ही श्वास, प्रश्वास के निरोध से होता है। प्राणायाम की साधना से

प्रकाश का आवरण अर्थात् विवेक पर पड़ा हुआ अज्ञान का पर्दा क्षीण होता है तथा मन को स्थिरता की योग्यता प्राप्त होती है।<sup>43</sup> इन्द्रियों को अपने विषयों के साथ सम्बन्ध होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण जैसा करना प्रत्याहार बतलाया है।<sup>44</sup> अभिप्राय यह कि यम, नियम, आसन और प्राणायाम के प्रभाव से जब चित्त अपने विषयों से विरक्त होकर समाहित होने लगता है तब बहिर्मुखी वृत्ति वाली इन्द्रियों भी अन्तर्मुख होकर चित्त जैसा अनुकरण करने लगती है और चित्त के निरुद्ध होने पर स्वयं निरुद्ध हो जाती है। प्रत्याहार का फल इन्द्रियों का वशीकरण है।<sup>45</sup> प्रत्याहार निरूपण के साथ योगसूत्र का दूसरा पाद साधन पाद समाप्त होता है।

विभूतिपाद में योग के धारणा, ध्यान, समाधि अन्तरंगों का निरूपण करने के साथ ही धारणा, ध्यान और समाधि रूप संयम से साधक को प्राप्त होने वाली विभूतियों का विशद वर्णन है। सूत्रकार ने वृत्ति मात्र से किसी स्थान विशेष में चित्त को बँधने को धारणा कहा है।<sup>46</sup> इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है जब आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि द्वारा चित्त स्थिर हो जाये तब उसको अन्य विषयों से हटाते हुये एक ध्येय विषय में स्थिर धारणा है। धारणा की सिद्धि के पश्चात् ध्यान की स्थिति आती है। सूत्रकार ने प्रत्यय की तानता को ध्यान बताया है।<sup>47</sup> इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है कि धारणा में चित्त जिस वृत्तिमात्र से ध्येय में लगता है जब वह वृत्ति बीच में न आये तब उसको ध्यान कहते हैं। जब ध्यान इतना प्रबल हो जाय कि ध्याता और ध्यान अपने स्वरूप से सर्वथा शून्य जैसे होकर ध्येयस्वरूपमात्र से भासने लगें और ध्येय का स्वरूप ध्याता और ध्यान से अभिन्न होकर ध्येयाकारवृत्ति में भासने लगे तब ध्यान की यह अवस्था समाधि कहलाती है।<sup>48</sup> संयम के अभ्यास का फल बताते हुये सूत्रकार ने कहा है कि संयम के सिद्ध होने से समाधि-प्रज्ञा का आलोक फैलता है।<sup>49</sup> उसकी व्याख्या में बताया गया है कि जब संयम अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि को एक विषय पर लगाने का अभ्यास परिपक्व हो जाये तब समाधि-प्रज्ञा उत्पन्न होती है, जिससे ध्येय का ज्ञान यथार्थ रूप से होने लगता है, विभिन्न प्रकार की विभूतियाँ सिद्ध होने लगती हैं और फिर अन्त में विवेकख्याति का साक्षात्कार होता है। उक्त संयम के विनियोग के विषय में सूत्रकार ने बताया है कि इनका चित्त की भूमियों में अर्थात् वृत्तियों में विनियोग करना चाहिये। इस प्रकार करने से विवेक ज्ञान रूपी फल प्राप्त होता है।<sup>50</sup> धारणा और ध्यान में क्रमशः सम्प्रज्ञात अथवा सबीज-समाधि के अन्तर्गत है तथापि असम्प्रज्ञात अथवा निर्बीज समाधि की दृष्टि से ये भी बहिरंग ही हैं।<sup>51</sup> विभिन्न प्रकार के संयमों द्वारा सर्वभूतरूपज्ञान, पूर्वजातिज्ञान, परचित्त-ज्ञान आदि विभिन्न योग-विभूतियों-सिद्धियों का वर्णन किया गया है। यहाँ सिद्धान्त एवं साधनाओं की दृष्टि से उनका निरूपण आवश्यक न होने से इनका विस्तृत वर्णन नहीं किया जा रहा है।

प्रथम तीन पादों में योग के स्वरूप, उसके साधन ओर उससे होने वाली सिद्धियों का उल्लेख करने के बाद कैवल्य के उपयोगी चित्त का निर्णय करने के लिये सबसे पहले पाँच प्रकार की सिद्धियों की ओर उनसे उत्पन्न होने वाले पाँच सिद्ध चित्तों का वर्णन किया है। उन्होंने बताया है कि सिद्धियाँ जन्म, औषधि, तप, मन्त्र और समाधि से उत्पन्न होती हैं।<sup>52</sup> उनका अभिप्राय जैसा कि भोजवृत्ति में वर्णित है पक्षी आदि का आकाश में उड़ना जन्मजात सिद्धि है। पारद आदि रसायनों के उपयोग से होने वाली सिद्धियाँ औषधिजन्य सिद्धियाँ हैं। किसी मन्त्र के जप से प्राप्त सिद्धि मन्त्र-सिद्धि है। तप से प्राप्त होने वाली सिद्धि तपः सिद्धि है। पाँचवीं सिद्धि समाधि से उत्पन्न होने वाली है। चित्त के निरूपण के क्रम में आचार्य ने बताया है कि अनगिनत वासनाओं से चित्रित हुआ भी चित्त संहत्यकारी होने से परार्थ अर्थात् दूसरे के लिये ही है। कई वस्तुओं से मिलकर बनने वाली वस्तु संहत्यकारी कहलाती है और जो वस्तु संहत्यकारी है वह अपनी नहीं होती किसी दूसरे के लिये होती है। इसी प्रकार चित्त सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों के अंग-अंगी भाव के मेल से भी बना है, विवेकख्याति द्वारा जब साधक को पुरुष और चित्त का भेद स्पष्ट हो जाता है तब उसकी आत्मभावना कि-मैं कौन हूँ? क्या हूँ? इत्यादि निवृत्त हो जाती है और वह चित्त में ही सारे परिणामों को देखता है।<sup>53</sup> आगे उसके धर्मों से भिन्न अपने को अपरिणामी ज्ञान स्वरूप अनुभव करता है।<sup>54</sup> यहाँ व्युत्थान के निरोध का उपाय विवेक अभ्यास रूप प्रसंख्यान को बतलाकर तदनन्तर प्रसंख्यान के निरोध का उपाय कहते हुये जीवन-मुक्ति की पराकाष्ठा के रूप में धर्ममेघ समाधि का वर्णन हुआ है। जितने तत्त्व परस्पर विलक्षण स्वरूप वाले हैं उनका यथाक्रम विचार प्रसंख्यान कहलाता है यही विवेकज्ञान भी है। जब योगी पर-वैराग्य द्वारा प्रसंख्यान अर्थात् विवेक-ज्ञान से भी किसी सर्वज्ञत्व आदि फल की इच्छा नहीं रखता तब उस वैराग्यशील योगी में सर्वथा विवेकख्याति उत्पन्न होती है अर्थात् वह निरन्तर विवेक-ज्ञान की सुदृढ़ भूमि में प्रतिष्ठित हो जाता है जिससे व्युत्थान के संस्कारों के बीज सर्वथा समाप्त हो जाते हैं। ज्ञान की इस परिपक्व अवस्था को ही धर्म-मेघ-समाधि कहा गया है।<sup>55</sup> व्याख्याकार के अनुसार सम्प्रज्ञात समाधि की सबसे ऊँची अवस्था विवेकख्याति अर्थात् प्रसंख्यान है। इस विवेक ख्याति की परिपक्व अवस्था धर्ममेघ समाधि है जिसका फल असम्प्रज्ञात अर्थात् निर्बीज समाधि है। धर्ममेघ-समाधि से कलेश और कर्मों की निवृत्ति हो जाती है।<sup>56</sup>

गुणों की प्रवृत्ति पुरुष के भोग-अपवर्ग के लिये हैं। भोग और अपवर्ग को पुरुषार्थ कहा जाता है। इसी पुरुषार्थ के लिये गुण, शरीर, इन्द्रिय बुद्धि आदि रूपों में परिणत हो रहे हैं। जिस पुरुष का यह प्रयोजन सिद्ध हो गया उसके प्रति इनका कोई कार्य शेष नहीं रह जाता। तब उस पुरुष के भोग तथा अपवर्ग रूप सम्पादन से कृतार्थ हुये पुरुषार्थ शून्य कार्य-करण-स्वरूप गुण, प्रति-प्रसव को प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रतिलोम परिणाम से अपने कारण में लीन हो जाते हैं।<sup>57</sup> गुणों का इस प्रकार पुरुष का अपवर्ग सम्पादन करने के पश्चात् अपने कारण में लीन हो जाना कैवल्य कहा गया है। संक्षेप में पातंजल-योग

का यही स्वरूप स्पष्ट होता है। निष्कर्षतः पुरुष और प्रकृति अनादि और नित्य तत्त्व है। इनके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर पुरुष प्रकृतिकृत विकारों से अलग अपने साक्षी, चेता, केवल और निर्गुण रूप में अवस्थित हो जाता है।

अतएवं यह विदित होता है कि पतंजलि योग सूत्र में वर्णित सिद्धान्त एवं साधनाएँ अत्यन्त प्रचानीतम है जो वेद, उपनिषद, महाभारत (जिसमें भागवतगीता भी सम्मिलित है) बौद्ध एवं जैन योग संबंधी क्रियाओं में विविध रूपों में स्वीकृत होती रही है। तप एवं चित्तन संबंधी जो क्रियाएं एवं विचार उस समय अस्पष्ट तथा अनिश्चित रूप से विद्यमान थे उन सबका सूत्रवत् रचना, का व्यवस्थित कार्य महर्षि पतंजलि के कर कमलों से संपन्न हुआ। पतंजलि स्वयं ऋषि पुरुष थे। अतः उनके साधनात्मक जीवन के अनुभव तथा उस समय के क्रमशः विकसित हो रहे यौगिक क्रियाओं का सार रूप ही 'योग-सूत्र' में पिरोया गया है जो अत्यन्त परिष्कृत एवं वैज्ञानिकता को स्वयं में समेटे हुये है।

सन्दर्भ – सूची

- 
- <sup>1</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/2
  - <sup>2</sup> पातंजल योग प्रदीप, गीता प्रेस, गोरखपुर – पृष्ठ संख्या – 164,164
  - <sup>3</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/3
  - <sup>4</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/5
  - <sup>5</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/5 –6
  - <sup>6</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/12
  - <sup>7</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/15
  - <sup>8</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/16
  - <sup>9</sup> पातंजल योग सूत्र 1/17
  - <sup>10</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/16
  - <sup>11</sup> पातंजल योग प्रदीप- गीता प्रेस, गोरखपुर – पृष्ठ संख्या –186
  - <sup>12</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/23
  - <sup>13</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/24
  - <sup>14</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/27
  - <sup>15</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/29
  - <sup>16</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/33
  - <sup>17</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/34
  - <sup>18</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/17
  - <sup>19</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/47
  - <sup>20</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/48
  - <sup>21</sup> पातंजल योगसूत्र- 1/51
  - <sup>22</sup> पातंजल योगसूत्र- 2/1-2
  - <sup>23</sup> पातंजल योगसूत्र 2/2
  - <sup>24</sup> पातंजल योगसूत्र 2/3



- 
- 25 पातंजल योगसूत्र 2/12  
26 पातंजल योगसूत्र 2/18  
27 पातंजल योगसूत्र संख्या 2/18 पर व्यासभाष्य  
28 पातंजल योगसूत्र 2/19  
29 पातंजल योगप्रदीप गीता प्रेस, गोरखपुर पृष्ठ सं०-328  
30 पातंजल योगसूत्र 2/21  
31 पातंजल योगसूत्र 2/23-25  
32 पातंजल योगसूत्र 2/27  
33 पातंजल योगसूत्र 2/28  
34 पातंजल योगसूत्र 2/29  
35 पातंजल योगसूत्र 2/30  
36 पातंजल योगसूत्र 2/31  
37 पातंजल योगसूत्र 2/32  
38 पातंजल योगसूत्र 2/46  
39 पातंजल योगसूत्र 2/47  
40 पातंजल योगसूत्र 2/49  
41 पातंजल योगसूत्र 2/50  
42 पातंजल योगसूत्र 2/51  
43 पातंजल योगसूत्र 2/53  
44 पातंजल योगसूत्र 2/54  
45 पातंजल योगसूत्र 2/55  
46 पातंजल योगसूत्र 3/1  
47 पातंजल योगसूत्र 3/2  
48 पातंजल योगसूत्र 3/3  
49 पातंजल योगसूत्र 3/5  
50 पातंजल योगसूत्र 3/54  
51 पातंजल योगसूत्र 3/8  
52 पातंजल योगसूत्र 4/1  
53 पातंजल योगसूत्र 4/25  
54 पातंजल योगसूत्र 4/27  
55 पातंजल योगसूत्र 4/29  
56 पातंजल योगसूत्र 4/30  
57 पातंजल योगसूत्र 4/34